संत ज्ञानेश्वर जी महाराज

श्रीमद्भागवत कथा में सेवा और साधना का महामंत्र

लेखक- एक भक्त

वृन्दावन कोई मात्र भूगोल नहीं, अपितु भक्तिभावना की वह अमर धारा है जो युगयुगांतर से प्रवाहित हो रही है। यहाँ की वायु में रासलीलाओं का मधुर संगीत समाया हुआ है, यमुना की लहरों में कृष्णकन्हैया की किलकारियाँ गूँजती हैं और प्रत्यक धूलिकण में ब्रज की दिव्य स्मृतियाँ स्निग्धता बिखेरती हैं। यह वह पुण्यभूमि है जहाँ भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की त्रिवेणी का पावन संगम होता है। इसी अलौकिक पृष्ठभूमि में संत श्री ज्ञानेश्वर जी महाराज ने निराश्रित माताओं के कल्याण हेतु श्रीमद्भागवत कथा का जो महायज्ञ आयोजित किया, वह केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं, अपितु सेवा और साधना के उस महामंत्र का साकार स्वरूप था, जो संत समाज को नई दिशा प्रदान करता है।

संत ज्ञानेश्वर जी महाराज: करुणा के सागर और त्याग के अवतार

संत श्री ज्ञानेश्वर जी महाराज का व्यक्तित्व किसी दिव्य दीपस्तंभ के समान है, जिसकी ज्योति अंधकार में भटकते समाज को मार्ग दिखाती है। वे केवल कथावाचक नहीं, अपितु करुणा, सेवा और समर्पण के जीवंत प्रतीक हैं। उनकी वाणी में वेदपुराणों का गंभीर ज्ञान है तो हृदय में समस्त चराचर जगत के प्रति अनंत प्रेम और करुणा का स्रोत फूटता है। उनका जीवन हमें यह पाठ पढ़ाता है कि सच्चा संतत्व केवल उपदेश देने में नहीं, अपितु सेवा के माध्यम से भगवद्भक्ति को साकार करने में निहित है।

संतो की उपस्थिति: दिव्यता का स्पर्श

श्री राधाकृष्ण मन्दिर
कृष्णकुटीर महिला आश्रय सदन

अनेक पूज्य संतों की पावन उपस्थिति ने इस आयोजन को एक अद्भुत गरिमा और दिव्यता प्रदान की। यह दृश्य किसी देवसभा से कम नहीं था, मानो स्वर्ग से देवगण धरती पर अवतरित

हुए हों। संतों की मौन मुद्रा और कथा में तल्लीनता ने वातावरण को और भी पवित्र बना दिया।

नर सेवा ही नारायण सेवा है, मातृ सेवा ही मातृभक्ति है।

यह वाक्य केवल एक सूक्ति नहीं, अपितु भारतीय आध्यात्मिक चिंतन की वह सनातन सत्यता है जो मानवता को सेवा के माध्यम से ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग दिखाती है। इसका अर्थ है कि मनुष्य की सेवा करना ही ईश्वर की सच्ची सेवा है और मातृशक्ति की सेवा करना ही मातृभक्ति का परम स्वरूप है। यह भाव दया, करुणा और समर्पण की उस ऊँचाई को छूता है जहाँ सेवक और सेव्य के बीच का भेद मिट जाता है और सेवा ही साधना बन जाती है।

दार्शनिक आधार: अद्वैत का सिद्धांत

भारतीय दर्शन के अद्वैत सिद्धांत के अनुसार ईश्वर सर्वव्यापी है – "ईशावास्यमिदं सर्वं"। इसलिए प्रत्येक जीव में परमात्मा का वास है। जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य की सेवा करता है, तो वास्तव में वह ईश्वर की ही सेवा कर रहा होता है। यही भाव "नर सेवानारायण सेवा" का मूल आधार है। सेवा के माध्यम से मनुष्य अपने अहंकार को मिटाकर दिव्यता का अनुभव करता है।

मातृ सेवा: धर्म और संस्कृति का मेरुदंड

भारतीय संस्कृति में माता को प्रथम गुरु और देवतुल्य माना गया है। मातृशक्ति की सेवा करना केवल एक सामाजिक कर्तव्य नहीं, अपितु धर्म का अटूट हिस्सा है। जो व्यक्ति माता की सेवा करता है, वह समस्त देवताओं की पूजा का फल प्राप्त कर लेता है। मातृसेवा से बढ़कर कोई तपस्या नहीं, कोई यज्ञ नहीं – यही भाव "मातृ सेवा ही मातृभक्ति" का सार है।

प्रायोगिक रूप: संतों ने जिया यह सिद्धांत

संतों ने इस सिद्धांत को केवल उपदेश देकर नहीं, बल्कि अपने जीवन में जीकर दिखाया है। संत ज्ञानेश्वर जी महाराज ने वृन्दावन की निराश्रित माताओं की सेवा करके यह प्रमाणित किया कि मातृशक्ति की सेवा करना ही सच्ची भक्ति है। इसी प्रकार स्वामी विवेकानंद ने "दरिद्र नारायण" की सेवा को ईश्वरसाधना का सर्वोच्च रूप बताया।

सामाजिक संदर्भ: आधुनिक युग की अनिवार्यता

आज के युग में जब समाज में वैमनस्य, स्वार्थ और अलगाव बढ़ रहा है, तब "नर सेवानारायण सेवा" का सिद्धांत और भी प्रासंगिक हो जाता है। यह सिद्धांत समाज में एकता, सहयोग और करुणा का संचार करता है। निराश्रितों, वृद्धों, रोगियों और निर्धनों की सेवा करना ही आधुनिक युग की सच्ची धर्मसाधना है।

आध्यात्मिक लाभ: सेवा से मुक्ति तक

शास्त्रों में कहा गया है – "सेवया परमं पदम्"। सेवा के माध्यम से मनुष्य न только समाज का कल्याण करता है, बल्कि अपने आध्यात्मिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त करता है। सेवा करते समय मन से अहंकार और स्वार्थ का त्याग हो जाता है, जो मोक्ष प्राप्ति के लिए अनिवार्य है।

"नर सेवा ही नारायण सेवा है, मातृ सेवा ही मातृभक्ति है" – यह वाक्य मानव जीवन का सार संक्षेप है। यह हमें सिखाता है कि ईश्वर की खोज मंदिरमस्जिदों में नहीं, बल्कि सेवा के माध्यम से पीड़ित मानवता की आँखों में की जा सकती है। जब तक हम मनुष्य की सेवा नहीं करेंगे, तब तक ईश्वर की सच्ची भक्ति नहीं हो सकती। सेवा ही साधना है, सेवा ही पूजा है और सेवा ही मोक्ष का मार्ग है।

इस उद्घोषणा को उन्होंने मात्र शब्दों में नहीं, अपितु वृन्दावन की निराश्रित माताओं को भोजन, वस्त्र, सम्मान और आश्रय प्रदान करके जीवंत रूप दे दिया। उन्होंने समस्त संत समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया कि सच्ची भक्ति वह है जो सेवारूपी फल को अवश्य धारण करे।

श्रीमद्भागवत कथा: जीवन का पुनर्सृजन करने वाला अमृत

जैसे ही कथा का पावन प्रवाह आरंभ हुआ, सम्पूर्ण वातावरण भक्तिरस में स्नात हो गया। वृद्ध माताओं के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हुई, किन्तु वे आँसू दुःख के नहीं, अपितु आस्था, विश्वास और आत्मिक संतोष की ज्योति से दमक रहे थे। पचास से अधिक छवियों ने इस

दृश्य को एक जीवंत चित्रावली में बदल दिया, जहाँ प्रत्येक चेहरा भक्ति और करुणा की एक नई कहानी कह रहा था।

श्रीमद्भागवत महापुराण (12.3.51) का प्रमुख श्लोक इस अवसर का सार बन गया:

"कलेर दोषनिधे राजन् अस्ति ह्येको महागुणः।
कृतनाद्ध्यायतो गोविन्दं मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥"

अर्थात्, हे राजन! कलियुग दोषों की खान है, किन्तु इसमें एक महान गुण यह है कि केवल गोविन्द का स्मरण करने मात्र से मनुष्य सभी बंधनों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेता है। यह श्लोक सभी श्रोताओं के हृदय में यह विश्वास दृढ़ कर गया कि भगवान का नामस्मरण ही कलियुग में मोक्ष का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

दान और सहभागिता: जीवन का पुनर्निर्माण

इस आयोजन की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि यहाँ उपस्थित जनसमुदाय केवल श्रोता बनकर नहीं रहा, वरन् वह दानदाता और सहयोगी के रूप में सक्रिय भागीदार बना। श्रद्धालुओं

ने अनुभव किया कि दान केवल एक धार्मिक कर्मकाण्ड नहीं, अपितु मानवसेवा का सर्वोच्च रूप है, जिसके माध्यम से वे असहायों के जीवन में आशा का दीप जला सकते हैं।

गरुड़ पुराण के श्लोक ने इस भावना को और पुष्ट किया:

"दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥"

अर्थात्, धन की तीन गतियाँ हैं - दान, भोग और नाश। जो व्यक्ति न तो दान करता है और न ही भोग, उसके धन की तीसरी गति (नाश) ही होती है। इस आयोजन ने लोगों को यह शिक्षा दी कि दान के माध्यम से ही धन सार्थक होता है और सेवा का महत्व और भी बढ़ जाता है।भगवद्गीता (9.13) में स्वयं भगवान कहते हैं:

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

अर्थात्, हे अर्जुन! महात्मा लोग दैवी प्रकृति से युक्त होकर, अनन्य भाव से मेरा भजन करते हैं, क्योंकि वे मुझे समस्त प्राणियों का आदि और अविनाशी जानते हैं। संतों की उपस्थिति ने इस आयोजन को एक जीवंत विश्वविद्यालय में परिवर्तित कर दिया, जहाँ प्रत्येक श्रोता जीवन जीने की कला सीख रहा था।

सेवा और भक्ति: एक ही सिक्के के दो पहलू

संत ज्ञानेश्वर जी महाराज ने अपने जीवन और कार्यों से यह सिद्ध कर दिया कि सेवा और भक्ति एकदूसरे के पूरक हैं, दोनों में कोई भेद नहीं। सेवा के बिना भक्ति अधूरी है और भक्ति के बिना सेवा निर्जीव।

भूखों को अन्न देना,
निराश्रितों को आश्रय देना,
दुःखियों को सांत्वना देना,
असहायों को सम्मान देना –

ये सभी कार्य शास्त्रपाठ और मंत्रजाप से कम पुण्यदायी नहीं हैं। उपनिषद् का वचन "अतिथि देवो भव" आज भी सेवाभावना का मूल मंत्र है।

संत समाज की ऐतिहासिक परंपरा: सेवा की अमर गाथा

संत ज्ञानेश्वर जी महाराज की सेवाभावना कोई नई नहीं है, बल्कि यह भारत की संतपरंपरा की अटूट धारा का हिस्सा है।

तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा:

"परहित सरिस धरम नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई।"

अर्थात्, परहित के समान कोई धर्म नहीं और परपीड़ा के समान कोई पाप नहीं।

चैतन्य महाप्रभु ने हरिनाम संकीर्तन को जनजन तक पहुँचाकर भक्ति और सेवा का संदेश फैलाया।

स्वामी विवेकानंद ने कहा:

दरिद्र नारायण की सेवा ही सच्ची भक्ति है।" यह आयोजन इन सभी महान संतों की परंपरा को आगे बढ़ाता हुआ प्रतीत हुआ।

आधुनिक सामाजिक सरोकार: संत समाज की भूमिका

आज के युग में समाज को केवल उपदेशों की नहीं, बल्कि ठोस कार्यों की आवश्यकता है। संत समाज ने सदैव ही समाज के कल्याण में सक्रिय भूमिका निभाई है। निराश्रित माताओं को सम्मान देकर स्त्री सशक्तिकरण का संदेश दिया है। पर्यावरण संरक्षण और निर्धन बच्चों की शिक्षा को प्राथमिकता दी है। संत समाज आज भी समर्पण भाव से सामाजिक बदलाव का नेतृत्व कर रहा है। यह भूमिका केवल धार्मिक नहीं, बल्कि राष्ट्रनिर्माण की सेवा है। सेवा और

साधना के माध्यम से संत समाज आधुनिक चुनौतियों का समाधान बन रहा है।

गौ सेवा: गाय को भारतीय संस्कृति में माता का दर्जा दिया गया है और गौसेवा को धर्म का अंग माना गया है।

शिक्षा सेवा: निर्धन बच्चों को शिक्षित करना समाज का सबसे बड़ा यज्ञ है।

वृक्षारोपण: पर्यावरण संरक्षण और वृक्षारोपण को सेवा का हिस्सा माना जाना चाहिए।

स्त्री सशक्तिकरण: निराश्रित महिलाओं को सम्मान और सहारा देकर संत समाज ने यह सिद्ध किया कि नारी का उत्थान ही समाज का उत्थान है।

प्रेरणादायी दृष्टान्त: दीप से दीप जलते हैं

जब संत समाज सेवा के क्षेत्र में आगे आता है, तो उसका प्रभाव दीपक की लौ की भाँति फैलता है। संत ज्ञानेश्वर जी महाराज के इस पुनीत कार्य से प्रेरणा लेकर अन्य संत भी समाजसेवा के कार्यों में भाग लेंगे, यही आशा की जा सकती है।

रामचरितमानस का यह श्लोक इस भावना को दर्शाता है:

"सेवक धर्म परम गह नाना। सेवकु करइ नहिं आपुहिं खाना॥"

अर्थात्, सेवक का परम धर्म यही है कि वह दूसरों के लिए जिए, अपने लिए नहीं।

युगों तक गूंजने वाला संदेश

वृन्दावन का यह श्रीमद्भागवत कथामहायज्ञ केवल एक धार्मिक आयोजन नहीं, अपितु सेवा और साधना का वह महामंत्र है जो युगोंयुगों तक गूंजता रहेगा। इसमें भक्ति की मधुर ध्वनि है, करुणा की अविरल धारा है, त्याग की गौरवगाथा है और सेवा की ज्योतिर्मयी चेतना है।

संत श्री ज्ञानेश्वर जी महाराज के इस अभियान ने संत समाज को एक नई दिशा दी है:

कथा केवल शास्त्रपाठ न रहे, वह जीवन-पुनर्निर्माण का माध्यम बने।

दान केवल अर्पण न रहे, वह मानवसेवा का संकल्प बने।

संत केवल उपदेशक न रहें, वे समाज के कर्णधार बनें।

यह आयोजन भविष्य में संत समाज के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करेगा और समाज को यह विश्वास दिलाएगा कि "भक्ति और सेवा का जब संगम होता है, तभी जीवन सच्चा तीर्थ बनता है।"